वर्ष : 2, अंक : 8, जनवरी-मार्च 2013

पारस-परस

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं की संग्रहणीय त्रैमासिक पत्रिका

सृजन स्मरण

पं॰ नरेन्द्र शर्मा

(जन्म : 28 फरवरी, 1913; निधन : 11 फरवरी, 1989)

अब न रोना, व्यर्थ होगा, हर घड़ी आँसू बहाना
आज से अपने वियोगी, हृदय को हँसना सिखाना
अब न हँसने के लिए हम तुम मिलेंगे।
आज के बिछड़े न जाने कब मिलेंगें ?

वर्ष : 2, अंक : 8, जनवरी–मार्च, 2013 रजि. नं. यूपी एचआईएन/2011/39939

पारस-परस

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं
की संग्रहणीय त्रैमासिक पत्रिका

अनुक्रमणिका

संरक्षक मंडल
डॉ. एल.पी. पाण्डेय;
अभिमन्यु कुमार पाठक;
अरुण कुमार पाठक;
राजेश प्रकाश;
डॉ. अशोक मधुप
डॉ. सुनील जोगी

संपादक
शिवकुमार बिलग्रामी

संपादकीय कार्यालय
418, मीडिया टाइम्स अपार्टमेंट
अभयखण्ड–चार, इंदिरापुरम
गाजियाबाद – 201012
मो. : 09868850099

लेआउट एवं टाइपसेटिंगः
आइडियल ग्राफिक्स
मो. : 9910912530

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक एवं प्रकाशक द्वारा **प्रसून प्रतिष्ठान** के लिए **डॉ. अनिल कुमार पाठक** द्वारा **आप्शन प्रिन्टोफास्ट पटपड़गंज इन्ड. एरिया तथा 257, गोलागंज, लखनऊ** से मुद्रित एवं सी–49, बटलर पैलेस कॉलोनी, जॉपलिंग रोड़, लखनऊ से प्रकाशित ।

पारस–परस में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित रचनाकारों के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का रचनाओं में व्यक्त विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है । पत्रिका से संबंधित सभी विवाद लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। उपरोक्त सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।

संपादकीय		2
पाठकों की पाती		3
श्रद्धा सुमन		
'बाबूजी' तेरे जाने से	डॉ0 अनिल कुमार पाठक	4
कालजयी		
रुका न चाँद एक पल	पं॰ पारसनाथ पाठक 'प्रसून'	5
मानुष हौं तो वहीं....	रसखान	6
राम नाम रट लागी	संत रविदास	7
बोलिए तौ तब	सुन्दरलाल खंडेलवाल	8
ज़िन्दगी की कहानी	जानकी वल्लभ शास्त्री	9
ये गजरे तारों वाले	डॉ॰ रामकुमार वर्मा	10
काका हाथरसी के दोहे	काका हाथरसी	11
प्रेम	शमशेर बहादुर सिंह	12
समय के सारथी		
अंधियार ढलकर ही रहेगा	गोपाल दास नीरज	13
जल्दी में	कुंवर नारायण	15
बरखा! हौल–हौले आओ	डॉ॰ त्रिमोहन 'तरल'	17
पैगाम	आदिल रशीद	18
हमें अक्सर सलीका.....	अरुण सागर	20
दामिनी	आनंद क्रांतिवर्धन	21
स्वर्ग रोहिणी	संतोष कुमार खरे	23
कोई सपना बुनों ज़िंदगी के लिए	उदयभानु हंस	24
नारी–स्वर		
गांव वृन्दावन करूंगी	निर्मला जोशी	25
क्या मुझे पहचान लोगे	चन्द्रकान्ता चौधरी	26
लंदन का वसंत	ऊषा राजे सक्सेना	27
अब कैसे कोई गीत बने	संध्या सिंह	28
आकर्षण	रचना दीक्षित	29
गाँव हूँ मालूम है मुझे...	इंदु सिंह	30
मैं क्यों चुप रहूँ	वंदना ग्रोवर	31
कौन समझेगा	हेमलता	33
नवोदित रचनाकार		
आओ फिर हम गांव चलें....	प्रकाश राजस्थानी	34
अमर प्रेम	उदय शरण	35
'ब्रेकिंग न्यूज'	रणविजय राव	37
जब समन्दर भी...	अनूप कटियार 'प्रिय'	39
अंत में		
मस्तान मियाँ	शिवकुमार बिलग्रामी	40

संपादकीय

कभी–कभी हमारे मन में यह सोच घर बना लेती है कि क्या अकविता के इस युग में कविता का कोई महत्त्व है ? उद्विग्नता, अशांति, भाग–दौड़, आपा–धापी, अन्याय, मत्स्य न्याय–के इस दौर में कविता की सार्थकता क्या है ? स्वार्थ कुंठा, क्षोभ की परिधि में चक्कर काट रहे साधारण जन के लिए कविता का सुख क्या है ? क्या कविता अप्रासंगिक हो गई है ? क्या कविता अर्थहीन हो गई है ? क्या अब कविता में वो बल नहीं रहा कि वो असहाय को शांति–शरण दे सके ?

कहना न होगा कि कविता युगों–युगों से दीन–हीन, निर्धन–विपन्न के साथ–साथ समृद्ध–संपन्न और बलशाली व्यक्तियों की शांति–शरण स्थली रही है। अपने सारे संशाधनों, सारे बल प्रयोग, सारी तर्क शक्ति के बाद भी जब किसी को असफलता हाथ लगती और वो असहाय महसूस करता है, तब वो कविता की शरण में जाकर ही विश्राम पाता है :–

हुई है सोई जो राम रचि राखा।
को करि तर्क बढ़ावहि शाखा।। (गोस्वामी तुलसीदास)

या फिर उसके मुख से अनायास निकलता है:

जो रहीम भावी कतौं, होति आपुने हाथ।
राम न जाते हरिन संग, सीय न रावन साथ।। (रहीम)

इतनी सामर्थ्यवान कविता जिसने पस्त महाबलियों को भी शांति–शरण देने और नवजीवन देने का कार्य किया है, वो कविता क्यों महत्त्वहीन होती जा रही है ? वो कविता क्यों अर्थ हीन होती जा रही है ? हम यह तो नहीं कह सकते कि अब हालात इतने अच्छे हो गये हैं कि हर स्थिति–आदमी के नियंत्रण में है और उसे किसी कविता या विचार की शरण में जाने की आवश्यकता नहीं है। इसके विपरीत हमारा तंत्र अब इतना वृहत् और बहुकेन्द्रित होता जा रहा है कि मनुष्य कदम–कदम पर अपने आप को असहाय महसूस करता है। ऐसी स्थिति में तो शांति–शरण देन वाले विचारों/कविताओं की आवश्यकता और अधिक बढ़ जानी चाहिए। इस स्थिति में तो कविता की सार्थकता और अधिक अपेक्षित है। यह दौर तो कविता–काव्य के लिए और अधिक उर्वर भूमि प्रदान करता है। फिर ऐसा है क्यों नहीं ?

अशांत मन से शांति–प्रदायिनी कविता का सृजन कैसे हो।

वर्तमान दौर में काव्य साधकों की आवश्यकताएं और सामाजिक सरोकार इतने व्यापक और अकेन्द्रित हो गये हैं, विचार इतने क्षणजीवी और स्वकेन्द्रित हो गये है कि उनके चित्त में कहीं दूर–दूर तक शांति नही है। वे स्वंय अशांत हैं, और अशांत मन से की गई रचनाओं का बोझ वो पाठकों और श्रोताओं पर डालकर उन्हें भी अशांत कर देते हैं। ऐसा कर वो अपने आपको गौरवान्वित महसूस करते हैं। उन्हें लगता है कि वो परिवर्तन वाहिनी प्रकृति का भी रूख मोड़ सकते हैं।

बहरहाल, इसका परिणाम यह हुआ है कि काव्य–जगत और काव्य मंच पर कुछ 'हंसोड़ियों' का राज हो गया है। इन 'हंसोड़ियों' का काव्य के मर्म और धर्म से कुछ भी लेना देना नहीं है। उन्हें लगता है कि हँसी में ही सुख है, सुख से शांति है और शांति ही काव्य का धर्म है।

शांति, काव्य का धर्म है। लेकिन किस तरह का काव्य शांति प्रदान करता है, इसी बात को ध्यान में रखते हुए पारस–परस के इस अंक में हमने कुछ अनूठी कविताओं का चयन किया है। इस अंक में चयनित कविताएं हमारे मन को नीरवता और शांति प्रदान करने वाली हैं। अगर आप इन कविताओं को पूरी तन्मयता के साथ डूबकर पढ़ेगें तो इसे महसूस भी कर पायेंगें।

शिवकुमार बिलग्रामी
संपादक

पाठकों की पाती

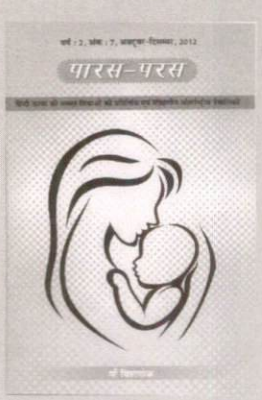

श्रीमान संपादक महोदय,

पारस–परस का अक्टूबर–दिसम्बर, 2012 का माँ विशेषांक पढ़ा। इस बार आपने पत्रिका में सारी कविताएं माँ पर ही दी हैं। एक तरह से यह सुखद है कि 'माँ' पर एक साथ इतनी सारी कविताएं एक जगह पढ़ने को मिल जायें, लेकिन इससे ऐसा लग रहा है जैसे यह कविताओं की पत्रिका नही अपितु 'माँ' पर चयनित कविताओं की पुस्तक हो। कविताओं की पत्रिका में विविधता की अपेक्षा होती है। यदि संभव हो तो आप इसमें काव्य लेखों, काव्य आलोचना, कवियों के साक्षात्कार जैसी कुछ विविधताएं लाकर इसे और सुरुचिपर्ण बनायें ताकि पत्रिका और अधिक लोकप्रिय हो सके।

उन्मेष चतुर्वेदी
नई दिल्ली

माननीय महोदय,

पारस–परस का माँ विशेषांक पढ़ा। मुझे याद आ रहा है कि। पहले भी आपने माँ विशेषांक निकाला था। मेरा सुझाव है कि आप अपनी पत्रिका में नये–रचनाकारों की कविताओं को अधिक से अधिक स्थान दे और उन रचनाकारों का संक्षिप्त परिचय थी दें। इससे प्रकाशित होने वाले रचनाकार का उत्साह बढता है। बहरलाल इस अंक में प्रकाशित मां पर लिखा गया इंदीवर का गीत मुझे बेहद अच्छा लगा।

सर्वेश कुमार गुप्ता
गाज़ियाबाद

महोदय्

पारस–परस का 'माँ विशेषांक' पढ़ा। इस बार माँ पर अलग–अलग अभिव्यक्तियों के साथ इतनी सारी कविताएं पढने को मिली, बहुत अच्छा लगा। पत्रिका का 'गेट–अप' बहुत अच्छा है। इसके लिए आपको बहुत–बहुत साधुवाद।

बी.बी भट्ट
गाज़ियाबाद

सूचना

पारस–परस के पाठकों और योगदानकर्त्ताओं के लिए एक खुश खबरी यह है कि 'प्रसून प्रतिष्ठान प्रबंधन' ने स्वर्गीय पारसनाथ पाठक 'प्रसून' की स्मृति में एक 'प्रसून प्रोत्साहन पुरस्कार' शुरू करने का निर्णय लिया है। इस पुरस्कार की राशि 1100 रूपये नकद है। यह पुरस्कार प्रत्येक अंक में प्रकाशित किसी ऐसी उत्कृष्ट रचना को दिया जायेगा जिसमें काव्य का मर्म और धर्म समाहित हो और जो काव्य की कसौटी पर खरी उतरती हो। यदि एक से अधिक रचनाएं पुरस्कृत करने योग्य पायी गयीं तो राशि को तद्नुसार विभक्त कर दिया जायेगा।

पुरस्कार के बारे में अंतिम निर्णय प्रसून प्रतिष्ठान प्रबंधन का होगा और इस बारे में प्रबंधन के निर्णय को चुनौती नहीं दी जा सकती।

रचनाकार अपनी रचनाएं कृपया निम्नलिखित पते पर भेजें–

संपादक : पारस–परस
418, मीडिया टाइम्स अपार्टमेंट
अभय खण्ड–चार, इंदिरापुरम
गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)
email : paarasparas.pathak@gmail.com / shivkumarbilgrami99@gmail.com

'बाबूजी' तेरे जाने से

– डॉ. अनिल कुमार पाठक

'बाबूजी' तेरे जाने से
हाँ! बस तेरे ही जाने से।
सब कुछ सूना, रीता, फीका,
बस तेरे खो जाने से।।

गिरा पहाड़ दुःखों का सिर पर,
इक पल भी कटना भारी है।
दे दो पता मुझे भी अपना,
आने की अब तैयारी है।
शायद तुमको पता नहीं है,
बिलख रहे अनजाने से।
सब कुछ सूना, रीता, फीका,
बस तेरे खो जाने से।।

कहता कौन ? फर्क नहीं पड़ता,
किसी के रहने, न रहने से।
कोई आकर मुझसे पूछे,
लगता कैसा छत ढहने से।
पीर हृदय की दूर न होगी,
केवल मन बहलाने से।
सब कुछ सूना, रीता, फीका
बस तेरे खो जाने से।।

वैसे भी मुझको क्या करना,
कोई माने या न माने।
हर धड़कन में तेरी स्मृति,
कोई जाने या न जाने।
'बाबूजी' दे दो नवजीवन,
आकर किसी बहाने से।
सब कुछ सूना, रीता, फीका
बस तेरे खो जाने से।।

रुका न चाँद एक पल

– पं॰ पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

निशा पुकारती रही रुका न चाँद एक पल।
चला गया प्रवाह सा,
छोड़ एक आह सा,
समीर काँप सा उठा,
भर रहा उसांस सा।
देखता ही रह गया तारकों का श्वेत–दल।
निशा पुकारती रही रुका न चाँद एक पल।।

रात साथ जो रहा,
प्रभात तक चला नहीं,
दीप तो बना दिया,
पतंग सा जला नहीं।
कह रहा है आसमान प्यार भी है एक छल।
निशा पुकारती रही रुका न चाँद एक पल।।

ओस अश्रु को बहा,
पंथ को निहारती,
अभाग्य साथ जो रहा,
जीत में भी हारती।
विरह–समुद्र में मिला निराश को कभी न थल।
निशा पुकारती रही रुका न चाँद एक पल।।

रसखान

रसखान का हिन्दी साहित्य में कृष्ण भक्त और रीतिकालीन कवियों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। रसखान ने हिन्दी छंद 'सवैया' में बहुत ही प्रभावशाली और यादगार रचनाएं की हैं। कहा जाता है इनके बचपन का नाम सैय्यद इब्राहीम था और यह हरदोई जिला के पिहानी कस्बा में संवत् 1615 ई॰ को पैदा हुए थे। इनके जन्म स्थान और जन्म वर्ष को लेकर कुछ मतान्तर भी हैं। रसखान हिन्दी के साथ–साथ फ़ारसी भाषा के भी बहुत बड़े विद्वान थे। इन्होंने भागवत का अनुवाद फारसी भाषा में किया है। बहरहाल, यहां पर हम अपने पाठकों को रसखान की अद्वितीय काव्यक्षमता से अवगत कराना चाहते हैं और इसीलिए उनके कुछ चुनिंदा सवैया आप तक पहुंचा रहे हैं।

(1)

मानुस हौं तो वहीं रसखान, बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बस मेरो, चरौं नित नंद की धेनु मँझारन।।
पाहन हौं तो वही गिरि को, जो धर्‌यो कर छत्र पुरंदर कारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिंदीकूल कदम्ब की डारन।।

(2)

सेस गनेस महेस दिनेस, सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं।
जाहि अनादि अनंत अखण्ड, अछेद अभेद सुबेद बतावैं।।
नारद से सुक व्यास रहे, पचिहारे तू पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरिया, छछिया भरि छाँछ पै नाच नचावैं।।

(3)

धूरि भरे अति सोहत स्याम जू, तैसी बनी सिर सुंदर चोटी।
खेलत खात फिरैं अँगना, पग पैंजनी बाजति, पीरी कछोटी।।
वा छबि को रसखान बिलोकत, वारत काम कला निधि कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी, हरि हाथ सों लै गयो माखन रोटी।।

संत रविदास

संत रविदास, कबीर के समसामयिक कहे जाते हैं। मध्ययुगीन संतों में रैदास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। शैशवावस्था से ही सत्संग के प्रति उनमें तीव्र अभिरूचि थी। संत रैदास के अनुसार प्रेममूलक भक्ति के लिए अहंकार की निवृत्ति आवश्यक है। भक्ति और अहंकार एक साथ संभव नही हैं।

काव्य–रचनाओं के रूप में प्राप्त संत रैदास के उपदेश समाज के कल्याण तथा उत्थान के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए उनके दो पद यहाँ दिये जा रहे हैं।

(1)

अब कैसे छूटै राम नाम रट लागी।
प्रभु जी, तुम चंदन हम पानी, जाकी अँग–अँग बास समानी।
प्रभु जी, तुम घन बन हम मोरा, जैसे चितवत चंद चकोरा।
प्रभु जी, तुम दीपक हम बाती, जाकी जोति बरै दिन राती।
प्रभु जी, तुम मोती हम धागा, जैसे सोनहिं मिलत सुहागा।
प्रभु जी, तुम स्वामी हम दासा, ऐसी भक्ति करै रैदासा।

(2)

ऐसा ध्यान धरूँ बनवारी।
मन पवन दिढ सुषमन नारी।।
सो जप जपूँ जु बहुरि न जपनां, सो तप तपूं जु बहुरि न तपनां।
सो गुर करौं जु बहुरि न करनां, ऐसे मरूँ जैसे बहुरि न मरनां।।1।।
उलटी गंग जमुन मैं ल्याऊँ, बिन ही जल संगम कै आऊँ।
लोचन भरि भरि ब्यंव निहारूँ, जोति बिचारि न और बिचारूँ।।2।।
प्यंड परै जीव जिस घरि जाता, सबद अतीत अनाहद राता।
जा परि कृपा सोई भल जांनै, गूंगो सा कर कहा बखांनैं।।3।।
सुंनि मंडल मैं मेरा बासा, ताथैं जीव मैं रहूँ उदासा।
कहै रैदास निरंजन ध्याऊँ, जिस धरि जांऊँ (जब) बहुरि न आंऊँ।।4।।

सुन्दरलाल खंडेलवाल

सुन्दरलाल खंडेलवाल भक्तिकाल के कवि थे। इनका जन्म संवत् 1653 में दौसा, राजस्थान में हुआ था। यह काव्यकला की रीति आदि से अच्छी तरह परिचित थे। अतः इनकी रचनाएं साहित्यिक और सरस हैं। इनकी भाषा काव्य की मँजी हुई ब्रजभाषा है। इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना 'सुन्दर विलास' है जिसमें अधिकतर 'कवित्त' और 'सवैया' हैं। हम अपने पाठकों को इनके द्वारा लिखे गये कुछ कालजयी 'कवित्त' से रू–ब–रू कराना चाहते हैं–

(1)

बोलिए तौ तब जब बोलिबे की बुद्धि होय,
ना तौ मुख मौन गहि चुप होय रहिए।
जोरिए तो तब जब जोरिबै की रीति जानै,
तुक छंद अरथ अनूप जामे लहिए।
गाइए तौ तब जब गाइबे को कंठ होय,
श्रवन के सुनत ही मनै जाय गहिए।
तुकभंग, छंदभंग, अरथ मिलै न कछु,
सुंदर कहत ऐसी बानी नहिं कहिए।।

(2)

पति ही सूँ प्रेम होय, पति ही सूँ नेम होय,
पति ही सूँ छेम होय, पति ही सूँ रत है।
पति ही जज्ञ जोग, पति ही है रस भोग,
पति ही सूँ मिटै सोग, पति ही को जत है
पति ही है ज्ञान ध्यान, पति ही है पुन्य दान,
पति ही है तीर्थ न्हान, पति ही को मत है।
पति बिनु पति नाहिं, पति बिनु गति नाहिं,
सुंदर सकल बिधि एक पतिव्रत है।।

(3)

ब्रह्म तें पुरुष अरु प्रकृति प्रगट भई,
प्रकृति तें महत्तात्तव, पुनि अहंकार है।
अहंकार हू तें तीन गुण सत, रज, तम,
तमहू तें महाभूत विषय पसार है
रजहू तें इंद्री दस पृथक पृथक भई,
सत्ताहू तें मन, आदि देवता विचार है।
ऐसे अनुक्रम करि शिष्य सूँ कहत गुरु,
सुंदर सकल यह मिथ्या भ्रमजार है।।

जानकी वल्लभ शास्त्री

जानकी वल्लभ शास्त्री का जन्म 5 फरवरी 1916 में बिहार के मैगरा गांव में हुआ था। आपका काव्य संसार बहुत ही विविध और व्यापक है। आप स्वच्छंद धारा के अंतिम कवि थे जो छायावादी अतिशय लाक्षणिकता और भावात्मक रहस्यात्मकता से मुक्त थी। आपको उत्तर प्रदेश सरकार ने भारत–भारती पुरस्कार से सम्मानित किया है। 7 अप्रैल, 2011 को मुजफ्फरपुर बिहार में इन्होंने अंतिम सांस ली।

ज़िन्दगी की कहानी

ज़िंदगी की कहानी रही अनकही!
दिन गुज़रते रहे, साँस चलती रही!

अर्थ क्या ? शब्द ही अनमने रह गए,
कोष से जो खिंचे तो तने रह गए,
वेदना अश्रु–पानी बनी, बह गई,
धूप ढलती रही, छाँव छलती रही!

बाँसुरी जब बजी कल्पना–कुंज में
चाँदनी थरथराई तिमिर पुंज में
पूछिए मत कि तब प्राण का क्या हुआ,
आग बुझती रही, आग जलती रही!

जो जला सो जला, ख़ाक खोदे बला,
मन न कुंदन बना, तन तपा, तन गला,
कब झुका आसमाँ कब रुका कारवाँ,
द्वंद्व चलता रहा पीर पलती रही!

बात ईमान की या कहो मान की
चाहता गान में मैं झलक प्राण की,
साज़ सजता नहीं, बीन बजती नहीं,
उँगलियाँ तार पर यों मचलती रहीं!

और तो और वह भी न अपना बना,
आँख मूंदे रहा, वह न सपना बना!
चाँद मदहोश प्याला लिए व्योम का,
रात ढलती रही, रात ढलती रही!

यह नहीं जानता मैं किनारा नहीं,
यह नहीं, थम गई वारिधारा कहीं!
जुस्तजू में किसी मौज की, सिंधु के–
थाहने की घड़ी किन्तु टलती रही!

डा॰ रामकुमार वर्मा

डा॰ रामकुमार वर्मा आधुनिक हिन्दी साहित्य के जाने–माने कवि हैं। उन्होंने रहस्यवाद के हर पहलू का अध्ययन और मनन किया हैं। उनकी रचनाओं में व्यंग्य और हास्य का भी पुट मिलता है। डा॰ रामकुमार वर्मा का जन्म मध्यप्रदेश के सागर जिला में 15 सितम्बर 1905 को हुआ था। इनका निधन 1990 में हुआ। यहां पर हम उनकी रहस्यवाद और छायावाद पर आधारित कविताएं दे रहे हैं।

ये गजरे तारों वाले

इस सोते संसार बीच,
जग कर, सज कर रजनी बाले।
कहाँ बेचने ले जाती हो,
ये गजरे तारों वाले ?
मोल करेगा कौन,
सो रही हैं उत्सुक आँखें सारी।
मत कुम्हलाने दो,
सूनेपन में अपनी निधियाँ न्यारी।।
निर्झर के निर्मल जल में,
ये गजरे हिला हिला धोना।
लहर हहर कर यदि चूमे तो,
किंचित् विचलित मत होना।।
होने दो प्रतिबिम्ब विचुम्बित,
लहरों ही में लहराना।
'लो मेरे तारों के गजरे'
निर्झर–स्वर में यह गाना।।
यदि प्रभात तक कोई आकर,
तुम से हाय! न मोल करे।
तो फूलों पर ओस–रूप में
बिखरा देना सब गजरे।।

एक दीपक किरण–कण हूँ

धूम्र जिसके क्रोड़ में है, उस अनल का हाथ हूँ मैं,
नव प्रभा लेकर चला हूँ, पर जलन के साथ हूँ मैं
सिद्धि पाकर भी, तुम्हारी साधना का.....
ज्वलित क्षण हूँ।
एक दीपक किरण–कण हूँ

व्योम के उर में, अपार भरा हुआ है जो अँधेरा
और जिसने विश्व को, दो बार क्या सौ बार घेरा
उस तिमिर का नाश करने के लिए,
मैं अटल प्रण हूँ।
एक दीपक किरण–कण हूँ।

शलभ को अमरत्व देकर, प्रेम पर मरना सिखाया
सूर्य का संदेश लेकर, रात्रि के उर में समाया
पर तुम्हारा स्नेह खोकर भी
तुम्हारी ही शरण हूँ।
एक दीपक किरण–कण हूँ।

काका हाथरसी

काका हाथरसी का जन्म 18 सितम्बर, 1906 को उत्तर प्रदेश के हाथरस कस्बे में हुआ था। काका हाथरसी अपनी अनूठी हास्य शैली के लिए विश्व विख्यात हैं। उन्होंने दोहा, कुंडलिनी और सवैया जैसे हिन्दी छन्द, जो मुख्यतः भक्ति, श्रगांर और वीर रस के आगार होते थे, में हास्य रस का सूत्रपात कर इन छन्दों को समीचीन बना दिया। काका हाथरसी ने 18 सितम्बर 1995 को अंतिम साँस ली। यहां उनके हास्यरस से परिपूर्ण कुछ दोहे प्रस्तुत हैं।

अक्लमंद से कह रहे, मिस्टर मूर्खानन्द
देश धर्म में क्या धरा, पैसे में आनन्द

अगर फूल के साथ में, लगे न होते शूल
बिना बात ही छेड़ते, उनको नामाकूल

अंधा प्रेमी अक्ल से, काम नहीं कुछ लेय
प्रेम नशे में गधी भी, परी दिखाई देय

अच्छी लगती दूर से, मटकाती जब नैन
बाहों में आ जाये तब, बोले कड़वे बैन

अति की भली न दुश्मनी, अति का भला न प्यार
तू–तू मैं–मैं जब हुई, प्यार हुआ बेकार

अपनी गलती नहिं दिखे, समझे खुद को ठीक
मोटे–मोटे झूठ को, पीस रहा बारीक

अधिक दिनों तक चल नहीं, सकता वह व्यापार
जिसमें साझीदार हों, लल्लू–पंजू यार

शमशेर बहादुर सिंह

शमशेर बहादुर सिंह का जन्म 13 नवम्बर, 1911 को हुआ था। शमशेर बहादुर सिंह आधुनिक हिन्दी कविता के प्रगतिशील कवि हैं। प्रयोगवाद और नई कविता के कवियों की प्रथम पंक्ति में इनका स्थान है। शमशेर की कविताओं में शिल्प कौशल के प्रति अतिरिक्त जागरूकता है। अभिव्यक्ति की वक्रता द्वारा वर्ण–विग्रह और वर्ण–संधि के आधार पर नयी शब्द योजना के प्रयोग से चामत्कारिक आघात देने की प्रवृत्ति इनके काव्य में ठोस विचार तत्त्व देने की अपेक्षा अधिक महत्त्व रखती हैं। इनका निधन 12 मई, 1993 को हुआ।

प्रेम

द्रव्य नहीं कुछ मेरे पास
फिर भी मैं करता हूं प्यार
रूप नहीं कुछ मेरे पास
फिर भी मैं करता हूं प्यार
सांसारिक व्यवहार न ज्ञान
फिर भी मैं करता हूं प्यार
शक्ति न यौवन पर अभिमान
फिर भी मैं करता हूं प्यार
कुशल कलाविद् हूं न प्रवीण
फिर भी मैं करता हूं प्यार
केवल भावुक दीन मलीन
फिर भी मैं करता हूं प्यार।

मैंने कितने किए उपाय
किन्तु न मुझ से छूटा प्रेम
सब विधि था जीवन असहाय
किन्तु न मुझ से छूटा प्रेम
सब कुछ साधा, जप, तप, मौन
किन्तु न मुझ से छूटा प्रेम
कितना घूमा देश–विदेश
किन्तु न मुझ से छूटा प्रेम
तरह–तरह के बदले वेष
किन्तु न मुझ से छूटा प्रेम।
उसकी बात–बात में छल है
फिर भी है वह अनुपम सुंदर
माया ही उसका संबल है
फिर भी है वह अनुपम सुंदर
वह वियोग का बादल मेरा
फिर भी है वह अनुपम सुंदर
छाया जीवन आकुल मेरा
फिर भी है वह अनुपम सुंदर
केवल कोमल, अस्थिर नभ–सी
फिर भी है वह अनुपम सुंदर
वह अंतिम भय–सी, विस्मय–सी
फिर भी है वह अनुपम सुंदर।

गोपाल दास नीरज

गोपाल दास नीरज का जन्म 4 जनवरी, 1924 को उत्तर प्रदेश के इटावा जिला के पुरावली गांव में हुआ था। गोपाल दास नीरज हिन्दी काव्य के पुरोधा कवि हैं। उन्होंने अपनी मर्मस्पर्शी काव्यानुभूति तथा सरल भाषा द्वारा हिन्दी कविता को एक नया मोड़ दिया है। आपने हिन्दी फिल्मों के लिए भी कई लोकप्रिय गाने लिखे हैं। आपको पद्मभूषण सम्मान से सम्मानित किया जा चुका है।

अंधियार ढल कर ही रहेगा

अंधियार ढल कर ही रहेगा

आंधियां चाहें उठाओ,
बिजलियां चाहें गिराओ,
जल गया है दीप तो अंधियार ढल कर ही रहेगा।

रोशनी पूंजी नहीं है, जो तिजोरी में समाये,
वह खिलौना भी न, जिसका दाम हर गाहक लगाये,
वह पसीने की हंसी है, वह शहीदों की उमर है,
जो नया सूरज उगाये जब तड़पकर तिलमिलाये,
उग रही लौ को न टोको,
ज्योति के रथ को न रोको,
यह सुबह का दूत हर तम को निगलकर ही रहेगा।
जल गया है दीप तो अंधियार ढल कर ही रहेगा।

दीप कैसा हो, कहीं हो, सूर्य का अवतार है वह,
धूप में कुछ भी न, तम में किन्तु पहरेदार है वह,
दूर सो तो एक ही बस फूंक का वह है तमाशा,
देह से छू जाय तो फिर विप्लवी अंगार है वह,
व्यर्थ है दीवार गढना,
लाख लाख किवाड़ जड़ना,

.....जारी

मृतिका के हांथ में अमरित मचलकर ही रहेगा।
जल गया है दीप तो अंधियार ढल कर ही रहेगा।
है जवानी तो हवा हर एक घूंघट खोलती है,
टोक दो तो आंधियों की बोलियों में बोलती है,
वह नहीं क़ानून जाने, वह नहीं प्रतिबन्ध माने,
वह पहाड़ों पर बदलियों सी उछलती डोलती है,
जाल चांदी का लपेटो,
खून का सौदा समेटो,
आदमी हर क़ैद से बाहर निकलकर ही रहेगा।
जल गया है दीप तो अंधियार ढल कर ही रहेगा।

वक्त को जिसने नहीं समझा उसे मिटना पड़ा है,
बच गया तलवार से तो फूल से कटना पड़ा है,
क्यों न कितनी ही बड़ी हो, क्यों न कितनी ही कठिन हो,
हर नदी की राह से चट्टान को हटना पड़ा है,
उस सुबह से सन्धि कर लो,
हर किरन की मांग भर लो,
है जगा इन्सान तो मौसम बदलकर ही रहेगा।
जल गया है दीप तो अंधियार ढल कर ही रहेगा।

न जाने शहर है कैसा, न जाने लोग हैं कैसे
किसी की चुप्पियों को भी, ये कमज़ोरी समझते हैं
बहुत बचकर, बहुत बचकर, बहुत बचकर चलो तो भी
बिना मतलब, बिना मतलब, बिना मतलब उलझते हैं

—दिनेश रघुवंशी

कुंवर नारायण

कुंवर नारायण का जन्म उत्तर प्रदेश के फैज़ाबाद में 19 सितम्बर, 1927 को हुआ था। कुंवर नारायण को अपनी रचना शीलता में इतिहास और मिथक के माध्यम से वर्तमान को देखने के लिए जाना जाता है। आप को 'ज्ञान पीठ पुरस्कार' के साथ–साथ पद्मभूषण' से भी सम्मानित किया जा चुका है।

जल्दी में

प्रियजन
मैं बहुत जल्दी में लिख रहा हूं
क्योंकि मैं बहुत जल्दी में हूं लिखने की
जिसे आप भी अगर
समझने की उतनी ही बड़ी जल्दी में नहीं हैं
तो जल्दी समझ नहीं पायेंगे
कि मैं क्यों जल्दी में हूं।
जल्दी का जमाना है
सब जल्दी में हैं
कोई कहीं पहुंचने की जल्दी में
तो कोई कहीं लौटने की ...
हर बड़ी जल्दी को
और बड़ी जल्दी में बदलने की
लाखों जल्दबाज मशीनों का
हम रोज आविष्कार कर रहे हैं
ताकि दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती हुई
हमारी जल्दियां हमें जल्दी से जल्दी
किसी ऐसी जगह पर पहुंचा दें
जहां हम हर घड़ी
जल्दी से जल्दी पहुंचने की जल्दी में है।
मगर.....कहां ?

जारी...

यह सवाल हमें चौंकाता है
यह अचानक सवाल इस जल्दी के जमाने में
हमें पुराने जमाने की याद दिलाता है।
किसी जल्दबाज आदमी की सोचिए
जब वह बहुत फुर्ती से चला जा रहा हो
–एक व्यापार की तरह–
उसे बीच में ही रोक कर पूछिए,
'क्या होगा अगर तुम
रोक दिये गये इसी तरह
बीच ही में एक दिन
अचानक.....?'
वह रुकना नहीं चाहेगा
इस अचानक बाधा पर उसकी झुंझलाहट
आपको चकित कर देगी।
उसे जब भी धैर्य से सोचने पर बाध्य किया जायेगा
वह अधैर्य से बड़बड़ायेगा।
'अचानक' को 'जल्दी' का दुश्मान मान
रोके जाने से घबड़ायेगा। यद्यपि
आपको आश्चर्य होगा
कि इस तरह रोके जाने के खिलाफ
उसके पास कोई तैयारी नहीं.....

ये दिल तो मेरा दिल है, ख़ामोश रहे क्यूंकर
पत्थर को अगर तोड़ो, आवाज़ निकलती है
– क़मर मुरादाबादी

बरखा! हौले–हौले आओ

– डॉ॰ त्रिमोहन 'तरल'

छत पर टीन पुरानी उसको
तड़–तड़ नहीं बजाओ
बरखा! हौले–हौले आओ

मजदूरन माँ हाड़ तोड़कर
थोड़ा–बहुत कमा लाई है
रुखा–सूखा खिला–पिला
मुन्नी को अभी सुला पाई है
खुद जग लेगी पर उसकी
गुड़िया को नहीं जगाओ
बरखा! हौले–हौले आओ

गुडिया का बापू भी यों तो
ज़्यादा नहीं कमा पाता है
उसी पुरानी छत से बापू
के बापू तक का नाता है
टीन बदलवाकर, यादों से
रिश्ता मत तुड़वाओ
बरखा! हौले–हौले आओ

बूँदा–बाँदी में तो काफी
काम यहाँ चलते रहते हैं
निपट दिहाड़ी मजदूरों के
बच्चे भी पलते रहते हैं
तेज बरसकर बेचारों का
काम नहीं रुकवाओ
बरखा! हौले–हौले आओ

उपवन में धीरे–धीरे
आना भी तो आना होता है
कोमल कलियों को हल्के
हाथों से सहलाना होता है
जितना सहन कर सकें कलियाँ
उतना प्यार लुटाओ
बरखा ! हौले–हौले आओ

बूँद–बूँद से भरे सरोवर
बात यही सच्ची लगती है
घूँट–घूँट पानी पीने से
ही तो प्यास बुझा करती है
रिमझिम–रिमझिम बरस–बरस
धरती की प्यास बुझाओ
बरखा ! हौले–हौले आओ

संपर्क : 270, सेक्टर–5
आवास–विकास कालोनी
सिकन्दरा, आगरा–282007

पैग़ाम

– आदिल रशीद

चलो पैग़ाम दे अहले वतन को
कि हम शादाब रक्खें इस चमन को
न हम रुसवा करें गंगों – जमन को
करें माहौल पैदा दोस्ती का
यही मक़सद बना लें ज़िन्दगी का

कसम खायें चलो अम्नों अमाँ की
बढ़ायें आबो–ताब इस गुलसिताँ की
हम ही तक़दीर हैं हिन्दोस्ताँ की
हुनर हमने दिया है सरवरी का
यही मक़सद बना लें ज़िन्दगी का

ज़रा सोचे कि अब गुजरात क्यूँ हो
कोई धोखा किसी के साथ क्यूँ हो
तराशे जिस्म फिर से रौशनी का
यही मक़सद बना लें ज़िन्दगी का

न अक्षरधाम, दिल्ली, मालेगाँव
न दहशत गर्दी अब फैलाए पाँव
वतन में प्यार की हो ठंडी छाँव
न हो दुश्मन यहाँ कोई किसी का
यही मक़सद बना लें ज़िन्दगी का

हवाएँ सर्द हों कश्मीर की अब
न तलवारों की और शमशीर की अब
ज़रूरत है ज़बाने–मीर की अब
तक़ाज़ा भी यही है शायरी का
यही मक़सद बना लें ज़िन्दगी का

मुहब्बत का जहाँ आबाद रक्खें
न कड़वाहट हो हरगिज़ याद रक्खें
नये रिश्तों की हम बुनियाद रक्खें
बढ़ायें हाथ हम सब दोस्ती का
यही मक़सद बना लें ज़िन्दगी का

संपर्क : aalmi.adab@gmail.com

कौन कहता है कि मौत आई तो मर जाऊँगा
मैं तो दरिया हूँ, समन्दर में उतर जाऊँगा
तेरे पहलू से उठूंगा तो यही मुश्किल है
सिर्फ़ इक शख्स को पाऊँगा, जिधर जाऊँगा
–अहमद नदीम 'कासमी'

हमें अक्सर सलीक़ा जो....

– अरुण सागर

हमें अक्सर सलीक़ा जो सिखाने बैठ जाते हैं
वही अपने बुज़ुर्गों के सरहाने बैठ जाते हैं

ज़रा सी उफ़ निकल जाये अगर माँ की जुबां से तो
सिहर कर पाँव हम माँ के दबाने बैठ जाते हैं

जहाँ साया ज़रा सा खुशनुमा मौसम बनाता है
वहीं वो धूप की चादर बिछाने बैठ जाते हैं

निभाते हैं वो हम से इस तरह रिश्ता मुहब्बत का
लगा कर आग पहले फिर बुझाने बैठ जाते हैं

न बाजू में, न पैरों में, न उनके हौसलों में दम
ग़मों का बोझ वो फिर भी उठाने बैठ जाते हैं

मुहब्बत में ज़रा सी दिल्लगी उनसे अगर कर दें
वो हम से रूठ कर आँसू बहाने बैठ जाते हैं

बुजुर्गों के दिलों की देखिये मासूमियत 'सागर'
वो क़िस्सा ग़ैर को घर का सुनाने बैठ जाते हैं

संपर्क : एस.बी.122, शास्त्री नगर
गाज़ियाबाद, उत्तर प्रदेश

दामिनी

– आनंद क्रांतिवर्धन

शिखण्डी समाज के मुंह पर
तमाचा मार कर
तुम चली गई
सिस्टम को तार–तार कर
काश ! तुम
हम सब मर्दों की तरह
सहनशील होतीं
तो आज़ हमारी तरह
स–सम्मान जीवित होती
अगर तुम दरिन्दों के सामने
समर्पण कर देतीं
तुम्हारी आत्मा भले ही तार–तार हो जाती
पर आंतें तो सलामत रह जातीं।
तुम्हारे जैसी लड़कियाँ
जो इज्जत के लिए लड़ती हैं
वो ये नहीं जानतीं
कि जीने के लिए आत्मा की नहीं
आंतों की जरूरत पड़ती है।

तुमने वहशियों के सामने
समर्पण न कर के
लॉ एण्ड ऑर्डर भंग कर दिया है
गहरी नींद से जगाकर
सरकार को शर्मसार कर दिया है
तुम दूसरों से अलग क्यों बनीं
इज्ज़त जैसी मामूली चीज़ के लिए
इतना क्यों तनीं !
अरी, जिस समय यह तंत्र सो रहा था

क्या तुम्हारे साथ
कुछ नया घटित हो रहा था ?
हर रोज, हजारों दामिनियाँ
चुपचाप ऐसा ही धैर्य दिखाती हैं
वे तुम्हारी तरह
आसमान सिर पर थोड़े ही उठाती हैं !

तुमने क्या सोचा
तुम्हारे इस तरह चले जाने से
जाग जाएगा यह देश
बदल जाएगा रूढ़ियों भरा परिवेश

इन गीदड़ भभकियों से
मैं डरने वाला नहीं हूँ
मोमबत्तियों की कंपकंपाती लौ से
जागने वाला नहीं हूँ

सरकार को दोष मत देना
सारी गलती तुम्हारी हैं
तुमने ही नहीं पहने होंगे ठीक से कपड़े
इसीलिए उठ खड़े हुए होंगे सारे लफड़े
दिन छिपने के बाद घर से बाहर क्यों
निकलीं ?
ब्वॉय–फ्रैण्ड के साथ
क्यों उड़ना चाहती थी बनकें तितली ?
क्या तुम नहीं जानतीं
यह राजधानी है
और इसकी रगों में जो बहता है
वह खून नहीं पानी है
यहाँ लोग दर्द होने पर भी
बिना उफ़ किए खामोशी से सहते हैं
इसीलिए सुख से रहते हैं।

जिनकी बेचैन आत्मा कुलबुलाती है
अपने खोल में पड़ी
चुपचाप नहीं सड़ती है
उनके लिए तो मुझे
दफा एक सौ चवालिस लगानी पड़ती है

ऐ तंत्र
अब तक जो हुआ – काफी है
यह मत समझना
हर बार की तरह इस बार भी तुझे माफी है
मैं दामिनी हूँ
तेरी आँखें खोलने के लिए
मेरी एक कौंध, एक चमक काफी है
व्यर्थ नहीं जाएंगी
मेरे रक्त से सिंचित
जन सैलाब की भावनाएं
नया सूरज लेकर आ रहा है
धधकती हुई ज्वालाएं।

संपर्क : 89 डी जी एंड जे (यू.)
ग्रीन अपार्टमेंट्स
पीतमपुरा, दिल्ली–110034

स्वर्ग रोहिणी

– संतोष कुमार खरे

(श्री संतोष कुमार खरे भारतीय विदेश सेवा में कार्यरत हैं। आपका हिंदी, उर्दू और संस्कृत भाषाओं पर समान अधिकार है। आपके रचनाएं कई पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं।

हिमायल की अंतिम कगार
आकाशगंगा के किनारे
अनंतता तक चमकते
सिक्ता–कण सदृश तारे
व्योम के श्यामल कुंड में निरंतर
विलंबित किरण पुंज भँवर
धवल धारा के प्रपात
छिटकाते उल्का–फुहार, दिव्य वात
जो अंतरिक्ष में अठखेलियाँ करता
अदृश्य स्निग्धता से मुझे घेर लेता है
साँस रोकूँ इससे पहले
कपाल में प्रविष्ट हो सब घोल लेता है
फिर उच्छवास के ही संग
फैलते बाहर अंतर्मन के रंग
दुर्योधनी क्रुद्ध लाली
शिखंडी का स्त्रैण पीत
द्रौपदी नासा–च्युत नीलम
धृतराष्ट्र विषाद हरित
खिंचते चले आते हैं तरल लीक बन
किसी विराट तूलिका से रंजित गगन
बहुरंगी तुहिनकाय मृतात्माएँ मानो
आकाशगंगा निमज्जन से पुनीत हो
पुनः रूप धरतीं सप्राय इंद्रधनुष का
क्षितिज–रेखा की प्रत्यंचा पर जो कसा
और मैं एक इस शिखर पर
स्वर्गरोहिणी के सातवें सोपान तक पहुँच कर
रखने से पूर्व अष्टम पग
हिमसमाधि स्थित, मन सजग
प्रखर शीत कंपित प्राण
क्षीणवायुमदिर सरिता कृतस्नान
एकात्म अबाध प्रवाह से
विमुक्त अतीत से
निष्कंप
निश्वास
निर्निमेष

कोई सपना बुनो ज़िंदगी के लिए

– उदयभानु हंस

'रूबाई सम्राट' के नाम से लोकप्रिय श्री उदयभानु हंस जी लंबे समय से अध्यापन और लेखन कार्य से जुड़े रहे हैं। आप गवर्नमेंट कालेज, हिसार से प्रिंसिपल पद से सेवानिवृत्त होने के बाद काव्य–साधना में रत हैं।

मत जियो सिर्फ़ अपनी खुशी के लिए
कोई सपना बुनो ज़िंदगी के लिए

पोंछ लो दीन दुखियों के आँसू अगर,
कुछ नहीं चाहिए बंदगी के लिए

सोने चाँदी की थाली ज़रूरी नहीं,
दिल का दीपक बहुत आरती के लिए

जिसके दिल में घृणा का है ज्वालामुखी
वह ज़हर क्यों पिये ख़ुदक़ुशी के लिए

अब जाएँ ज़ियादा खुशी से न हम
ग़म ज़रूरी है कुछ ज़िंदगी के लिए

सारी दुनिया को जब हमने अपना लिया,
कौन बाकी रहा दुश्मनी के लिए

तुम हवा को पकड़ने की ज़िद छोड़ दो,
वक्त रुकता नहीं है किसी के लिए

शब्द को आग में ढालना सीखिए,
दर्द काफी नहीं शायरी के लिए

सब ग़लतफहमियाँ दूर हो जाएँगी,
हँस मिल लो गले दो घड़ी के लिए

गांव वृन्दावन करूंगी

– निर्मला जोशी

(उत्तराखंड के अल्मोड़ा नगर के पंत परिवार में जन्मी सुश्री निर्मला जोशी एक अरसे से साहित्य साधना में रत हैं और गीत की अस्मिता के लिए इन्होंने काफी संघर्ष किया है। आप गीत धर्मी पत्रिका संकल्प रथ की सह–संपादिका हैं।)

तुम डगर की धूल हो, सुनना भला लगता नहीं है
एक दिन माथे चढ़ाकर मैं इसे चंदन करूंगी।

मंदिरों में आजकल मेले
बहुत जुड़ने लगे हैं।
किंतु भीतर के विहग दल
बिन कहे उड़ने लगे हैं।
तुम बनो अब गीत या गीता कि सब स्वीकार होगा
सुन सकोगे तुम, इसे जब मीत मैं वंदन करूंगी

बीहड़ों में हाँफती यह
जिंदगी पल–पल थकी है।
कामना मेरी अभी तक
पूर्ण भी ना हो सकी है।
अश्रु बन झरती रही, मैं रेत के सुनसान तट पर
किंतु मैं मधुगान से यह गांव वृंदावन करूंगी।

भोर की हर किरण को मैं
बांध लेना चाहती हूँ।
तिमिर की सारी दिशाएं
लांघ लेना चाहती हूँ।
बहुत दिन तक मौन रहकर फिर कहीं जो खो गया था
आज उस स्वर का तुम्हारे द्वार पर गुंजन करूंगी।

बहुत दिन से कर न पाई
मैं व्यथा पर मंत्रणाएं।
इसलिए मन आंधियों के
बीच सहता यंत्रणाएं।
प्रश्न पर हर प्रश्न करने लगे हैं सांतिये भी
तुम अगर उत्तर बनो तो सजल अभिनंदन करूंगी।

क्या मुझे पहचान लोगे

– चन्द्रकान्ता चौधरी

एक दिन
इस देह पर
जलती चिता होगी भयावह
जिस हृदय में तुम बसे थे
धूल में होगा मिला वह
देख जलती देह को तुम
सहज अपना मान लोगे ?
क्या मुझे पहचान लोगे ?

जब प्रभंजन में उड़ेंगे
उस चिता के धूल कण वे
तब छुऐंगे
तव चरण मृतिका विकल हो
विकल कण वे
उस समय क्या उन कणों में
रूप को अनुमान लोगे ?
क्या मुझे पहचान लोगे ?

विरह आतप से जला मन
वेदना रोता फिरेगा
त्रसित चाहों का निरंतर
भार सा ढोता फिरेगा
उस समय
क्या तुम मुझे
दो आँसुओं का दान दोगे ?

लंदन का वसंत

– ऊषा राजे सक्सेना

(ऊषा राजे सक्सेना हिंदी के वरिष्ठ रचनाकारों में से एक हैं। आपके कई कहानी संग्रह और कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। आप ब्रिटेन की एकमात्र साहित्यिक हिन्दी त्रैमासिक पत्रिका 'पुरवाई' की सह–संपादिका हैं।)

तितली उड़ी

तितली उड़ी
भौरा हँसा
देखो फूल खिला
मधुबन में

राही थका
उसे प्यास लगी
वहाँ झरना बहा
पर्वत पर

आस जगी
देखो साथ मिला
फिर प्यार झरा
आँचल के तले

वहाँ ज्योति जगी
यहाँ दीप जला
अब तिमिर कहाँ
आलोक हुआ

लंदन का वसंत

फूल खिले औ भ्रमर उड़े
वासंती जब हवा चले

डार–डार में कली खिले
गली–गली में गंध उड़े

हरियाली भर–मन मुस्काए
स्नोड्रॉप गर्दन उचकाए

डेफोडिल गलबहियाँ डाले
फोरसाइथ चुनरी फहराए

पोलिएन्थस के रंग निराले
भरे होठ ट्यूलिप मुस्काए

डोरे क्या वसंत ने डाले
सूरज की किरणें दुलराएँ

नन्हें–मुन्ने बच्चे मचले
मम्मा कोट नहीं पहनेंगे

खूब धूप में खेलेंगे !
बदन धूप में सेकेंगे !

अब कैसे कोई गीत बने

– संध्या सिंह

शब्दों का झरना लुप्त हुआ
भावों का दरिया सुप्त हुआ
जब कलम रेत में ठूँठ हुई
अब कैसे कोई
गीत बने

जब चीर कलेजा बात लगे
और एक सदी सी रात लगे
या तेज दौड़ते खुशियों के
हिरनों पर कोई घात लगे

या बीच धार में छोड़ चले
फिर ऐसा निष्ठुर
मीत बने

बेचैन करे फिर व्यथा कोई
रोके ड्योढी पर प्रथा कोई
या घुटे साँस दीवारों में
अनकही रहे फिर कथा कोई

जो कसे बेडियाँ पैरों में
फिर कट्टर कोई
रीत बने

फिर पंख परिंदे का टूटे
या बीच राह मंजिल छूटे
पूरा घट जिसको सौंप दिया
वो बूँद बूँद जीवन लूटे

फिर कोई खंडित स्वप्न दिखे
या एक अधूरी
प्रीत बने

संपर्क : sandhy.20july@gmail.com

गुलों में रंग भरे बादे–नौबहार चले
चले भी आओ कि गुलशन का कारोबार चले
– फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़'

आकर्षण

– रचना दीक्षित

कुछ लोग अत्यधिक सख्त होते है,
या हो जाते हैं
जैसे कि तुम
सबने तुम्हें आज़मा के देखा
मैंने भी,
अंतर इतना ही था,
कि सब नमी से, व्यथित थे
और मैं, नमी के लिए ;
जानती जो हूँ, कि नमी के बिना,
मेरा अस्तित्व ही नहीं,
एक वो ही है, जो मुझे,
तुम्हारे नजदीक लाती है
तुम्हारे नज़दीक आते ही
फैलती हूँ, बिखरती हूँ
मैं लिपटती हूँ, तुम्हारी देह से
पाती हूँ सम्पूर्ण अपने आपको
और जानते हो तब कैसी,
लालिमा निखरती है तुम्हारी काया पर
क्या कहूँ अब,
जब से धरा है तुमने ये लौह रूप
तुम्हारा सामीप्य पाने को
मुझे जंग होना ही पड़ा है

संपर्क : rachnadixit@gmail.com

गाँव हूँ मालूम है मुझे...

– इंदु सिंह

गाँव हूँ मालूम है मुझे फिर भी
चर्चा सब जगह मेरी
मै खो गया हूँ ये भी कहा किसी ने
बदल गया हूँ, ये भी।
मुझे, मेरी पहचान को धूमिल
किया जा रहा है
गाँव को विषय बना दिया है आज
मुझ पर चर्चा मेरी चिंता
सबसे बड़ा आज का मुद्दा।
न आना है किसी को मेरे पास
न जानने हैं मेरे जज़्बात
बस करनी चर्चा ख़ास।!
मेरी तरक्की मेरी खामियाँ
मुझ पर सरकारी खर्चे
सब मुझ पर कुर्बान
कितना क्या चाहिए
या कितना है मिला
न किसी को इसकी कोई पहचान।
कविता लिखो मुझ पर
कहानी भी
उपन्यास से तो भरा हूँ मैं
लिखने को हर किसी को
बस यूँ ही मिला हूँ मैं
जैसे समाज में कुछ और
अब शेष ही न हो।
महानगर मुझ पर गर्व करते
अपनी चमकीली गोष्ठियों में
थोथली बातों से अनभिज्ञ नहीं मैं
अब बस भी करो
गाँव था अब भी वहीं हूँ
बेवजह अपनी खामियाँ
भरने को
न मुझे उजागर करो
बदला मैं नहीं
बदल रहे हो तुम मुझे
जैसे हूँ रहने दो, हाँ!
इतनी ही फुर्सत है गर तुम्हे
लिखो कुछ खुद पर कभी
गर लिख सको तो.....

संपर्क : 102-5, सेक्टर–8
जसोला विहार
नई दिल्ली–110025

मैं क्यों चुप रहूँ

– वंदना ग्रोवर

मैं क्यों दिन भर सोचती रहूं
क्यों मैं रात भर जागती रहूं
मैं क्यों थरथरा जाऊं आहट से
क्यों मैं सहम जाऊं दस्तक से
मैं क्यों चुप रहूं
मैं कुछ क्यों न कहूं

मैं क्यों किसी के बधियाकरण की मांग करूं
क्यों मैं किसी के लिए फांसी की बात करूं
मैं क्यों न्यायालय का दरवाज़ा खटखटाऊं
क्यों मैं जा जाकर आयोगों में गुहार लगाऊं
मैं क्यों न जीऊं
मैं क्यों खून के घूंट पिऊं

मैं क्यों खुद अपने मित्र तय न करूं
क्यों मैं घर से बाहर न जाऊं
मैं क्यों अपनी पसंद के कपड़े न पहनूं
क्यों मैं रात को फिल्म देखने न जाऊं
मैं क्यों डरूं
मैं क्यों मरूं

मैं क्यों अस्पतालों में पड़ी रहूं वेंटिलेटरों पर
क्यों मैं मुद्दा बनूं कि चर्चा हो मेरे आरक्षणों पर
मैं क्यों इंडिया गेट के नारों में गूंजती रहूं
क्यों मैं विरोध की मशाल बन कर जलती रहूं
मैं क्यों न गाऊं
मैं क्यों न खिलखिलाऊं

जारी....

मैं क्यों धरती–सी सहनशीलता का बोझ ढोऊं
क्यों मैं मर–मर कर कोमलता का वेश धरूं
मैं क्यों दुर्गा, रणचंडी, शक्तिरूपा का दम भरूं
क्यों न मैं बस जीने के लिए ज़िंदगी जिऊं
मैं क्यों खुद को भूलूं
मैं क्यों खुद को तोलूं

मैं क्यों अपने जिस्म से नफरत करूं
क्यों मैं अपने होने पर शर्मिंदा होऊं
मैं क्यों अपने लिए रोज मौत मांगूं
क्यों मैं हाथ बांधे खड़ी रहूं सबसे पीछे
मैं क्यों होऊं तार–तार
मैं क्यों रोऊं जार–जार

मेरे लिए क्यों कहीं माफी नहीं
क्यों मेरा इंसान होना काफी नहीं।

संपर्क : groverv12@gmail.com

जो आग लगाई थी तुमने, उसको तो बुझाया अश्कों ने
जो अश्कों ने भड़काई है, उस आग को ठण्डा कौन करे
–मुइन अहसन 'जज़्बी'

कौन समझेगा

– हेमलता

क्या शांत रहना
नियति है मेरी ?
नहीं नहीं।
चंचल मन
कौन निभाने को साथ चलेगा
कौन समझेगा
साथ रहने की नियति है
व्यथा और दर्द की

चंचल मन
मौन खड़ा हो
एक दर्शन सा
हर जगह स्थिर–सा
कौन समझेगा
साथ रहने की नियति है
आतुरता और व्याकुलता की

चंचल मन
खिलखिलाता है
उदास मन
कभी गले लग जाता है
कौन समझेगा
समर्पित और सम्पूर्णता की

चंचल मन
यात्रा करता है
तुम्हारा मन
चल कर मुझ तक आया
दोनों का मन एक हो गया
साथ रहने की नियति है
कौन समझेगा
भावना और संवेदनाओं की

चंचल मन
सभी जगह
भावुक मन
साथ तुम्हारा पाया
पूजा से मृत्यु तक
साथ रहने की नियति है
कौन समझेगा
आत्मा और परमात्मा की।
अनेकता में एकता को ?

संपर्क : 179, पदम नगर,
किशनगंज
दिल्ली–110007

आओ फिर हम गांव चलें...

– प्रकाश राजस्थानी

लौट के उल्टे पांव चलें,
आओ फिर हम गांव चलें,
रिश्तों का अहसास नहीं है,
आपस में विश्वास नहीं है,
बच्चों को कुछ सिखला दें,
जीवन का एक पाठ पढ़ा दें,
छूने मां के पांव चलें,
आओ फिर हम गांव चलें।।

सड़कों पर यहाँ कार बहुत हैं,
आपस में तकरार बहुत है,
फूल कम, यहां खार बहुत है,
लोग यहां बेज़ार बहुत हैं,
चलो पीपल छांव चलें,
आओ फिर हम गांव चलें।।

चिड़ियों की यहां चहक नहीं है,
फूलों में यहां महक नहीं है,
खेत नहीं, खलिहान नहीं हैं,
पत्थर हैं, भगवान नहीं है,
ढूंढ़ने उनकी ठांव चलें,
आओ फिर हम गांव चलें।।

जब दिनभर रिक्शा ढोना है,
जब फुटपाथ पर ही सोना है,
यहां भी उसी बात का रोना है,त्र
माना झोंपड़ी मेरी कच्ची थी,
पर इस फुटपाथ से तो अच्छी थी,
उस टूटी टप्पर छांव चलें,
आओ फिर हम गांव चलें।
लौट के उल्टे पांव चलें,
आओ फिर हम गांव चलें।।

संपर्क : 701, के. एम. अपार्टमेंट
प्लाट नं., सेक्टर 12
द्वारका, नई दिल्ली

चांद–सितारों से क्या पूछूँ कब दिन मेरे फिरते हैं
वो तो विचारे खुद हैं भिकारी डेरे–डेरे फिरते हैं
– सैयद आबिद अली 'आबिद'

अमर प्रेम

– उदय शरण

दस साल हो चुके हैं
वालिया जी को रिटायर हुए
पति–पत्नी की जोड़ी
सलामत है
खुदा की रहमत है।
पत्नी का हार्ट–ऑपरेशन
हो चुका है
अपनी बीमारियों का क्या रोना
दवा का पॉलीथीन–बैग
सदा संग रहता है
शुगर, ब्लडप्रेशर के साथ–साथ
स्पॉन्डेलाइटिस का दर्द
न जाने कब जानलेवा हो जाए
अंदेशा बना ही रहता है।
श्रीमती जी को नज़रों की रोशनी
लगभग जाती रही है
लेकिन, पतिदेव के लिए
दवा, ग्लास और पानी
दूर से देख लेती हैं
खीझते, खिसियाते वालिया जी की
सभी ज्यादतियों में छिपे
गहरे प्यार को पढ़ लेती है।
वालिया जी कान से कम सुनते हैं
लेकिन श्रीमती जी के गठिये के
दर्द से
कराहने की आवाज़ को
चेहरे पर पढ़ लेते हैं।
बीते कल की कुछ चमकदार यादें
बेटे–बेटियों
पोते–पोतियों
का प्यार और रूखापन
इन्हीं बातों को बतियाते
थकते नहीं हैं
वृद्ध–दंपत्ति।
शाम–सुबह घर से दूर
कहीं भी–पार्क, मैदान में
निकल पड़ती है–
जीवन–संध्या–काल की
यह युगल–जोड़ी;
कभी घास पर
तो कभी बेंच पर बैठे
दोनों एक–दूसरे को
समय से दवा खाने की
हिदायतें देते रहते हैं।

वृद्ध की आंखों से
कभी–कभी अनायस आंसू छलक पड़ते हैं

.....जारी

जिन्हें बुढ़िया अपने पल्लू से पोछ देती है
कभी, न जाने किन बातों को याद कर
बुढ़िया का कलेजा फट पड़ता है,
तब वालिया जी ढांढ़स बंधाते हैं।

दोनों हंसते भी हैं–
जोर–जोर से
तब इनके चेहरों की लाल सुर्ख–झुर्रियों में
तरह–तरह की आकृतियां उभर आती हैं
जो बहुत कुछ कहती हैं
इनका शरीर आत्मा बन चुका है
इन्हें एक–दूसरे से न शिकायत है न डर है
दोनों का प्रेम अमर है।

संपर्क : फ्लैट नं॰ 207, पाकेट–4
सेक्टर–12, द्वारका
नई दिल्ली

निवेदन

पारस–परस पूरी तरह से एक गैर–व्यावसायिक पत्रिका है । इसका एकमात्र उद्देश्य काव्य के माध्यम से हिन्दी कवियों के पैगाम को जन–जन तक पहुंचाना है । इस पत्रिका में प्रकाशित सभी रचनाओं के साथ रचनाकारों का नाम और उनसे संबंधित उचित जानकारी दी जाती है जिससे रचनाकार को उचित श्रेय मिलता है । इतना ही नहीं, हम प्रत्येक रचना के प्रकाशन से पूर्व संबद्ध रचनाकार से लिखित/मौखिक अनुमति का भी भरसक प्रयास करते हैं । फिर भी यदि किसी रचनाकार/कॉपीराइट धारक को कोई आपत्ति है तो उनसे अनुरोध है कि वह हिन्दी काव्य के प्रचार–प्रसार को ध्यान में रखते हुए, इस पत्रिका के योगदानकर्त्ताओं से हुई भूलवश गलती को क्षमा कर दें। यदि कॉपीराइटधारक को कोई आपत्ति है तो कृपया paarasparas.pathak@gmail.com पर सूचित कर दें ताकि पत्रिका के आगामी अंकों में उनकी रचनाएं प्रकाशित करने से पूर्व लिखित अनुमति सुनिश्चित की जा सके और इस संबंध में आवश्यक पहलुओं को ध्यान में रखा जा सके ।

इस कार्य को प्रसून–प्रतिष्ठान द्वारा जन–जागरुकता और जनहित की दृष्टि से किया जा रहा है । इस पत्रिका को प्राप्त करने के लिए संपादकीय कार्यालय से संपर्क कर सकते हैं।

'ब्रेकिंग न्यूज'

– रणविजय राव

जैसा कि मत्स्य न्याय में होता है
बड़ी मछली खा जाती है छोटी मछली को
सूचना क्रांति के इस दौर में
ठीक वैसे ही
खा जाती हैं बड़ी खबरें
छोटी खबरों को।

जिस झोंके से
आती हैं खबरें
उससे भी तेज झोंका
बहा ले जाता है
उन खबरों को
और न जाने कब
और कैसे
ओझल हो जाती हैं खबरें
हमारी नजरों से।

आमतौर पर
खबरों से एक रिश्ता जुड़ता था पहले
घुमड़ती रहती थीं खबरें
हमारे दिलों–दिमाग में
कई दिनों तक।
एक बड़े मुद्दे से जुड़ी खबर–
मसलन भ्रष्टाचार
उद्वेलित करती है
विवश करती है
सोचने–विचारने को
उकसाती है
विरोध करने को
इससे पहले कि हम सक्रिय हों
झटके से आती है एक दूसरी

तथाकथित बड़ी खबर
और चली जाती है चलाकर रोलर
हमारी उत्तेजना पर।

किसानों की आत्महत्या
बढ़ती आर्थिक विषमता
बेरोजगारी
और जेब खाली करती महंगाई
की बात छोड़िए
बाबा रामदेव के ठीक बगल में
पवित्र गंगा को बचाने चले
बाबा निगमानंद
अंतिम सांस ले रहे होते हैं
और कोई सुध तक नहीं ले पाता
उनकी।

आज कल की ये लघुजीवी खबरें
लड़ती रहती हैं हर समय
एक बड़ी लड़ाई
ताजा दिखने के लिए
'ब्रेकिंग न्यूज' के रूप में।

खबरों द्वारा खबरों की हत्या तक तो ठीक है
पर किसकी होगी जिम्मेदारी, और
किस पर लगेगा इल्जाम
संवेदनशीलता की हत्या का ?

दरअसल
नवउदारवाद के इस दौर में
न्यूज, इंडस्ट्री बन गई है
और दर्शक उपभोक्ता
और इन भोले दर्शकों की क्या बिसात
जो परोसा जाएगा
वही तो ठूसेंगे।

संपर्क : 1168, सेक्टर 23 ए
गुड़गांव, हरियाणा

जब समन्दर भी ...

– अनूप कटियार 'प्रिय'

जब समन्दर भी कभी–कतरा रहा होगा
तब न अपने आप पर इतरा रहा होगा

जो मुहब्बत में तेरी पागल हुआ था कल
सर वही दीवार से टकरा रहा होगा

जिन्दगी का हर सबक़ उसने पढ़ा हँसकर
मौत से हरगिज नहीं घबरा रहा होगा

आईना सच बोलता है, जानते हैं सब
आईने से इसलिए कतरा रहा होगा

आज पुरवा साथ अपने खुशबुएं लायी
जुल्फ में प्रिय के कोई गज़रा रहा होगा

संपर्क : देवब्रहमापुर, पोस्ट–गौरीकरन
कानपुर, उत्तर प्रदेश

न मेरा है न तेरा है ये हिन्दुस्तान सबका है
नहीं समझी गई ये बात तो नुकसान सबका है
–उदय प्रताप सिंह

मस्तान मियाँ

– शिवकुमार बिलग्रामी

ताजमहल का राज़ बताकर ख़ूब हँसे मस्तान मियाँ
मुर्दा दिलों में आग लगाकर ख़ूब हँसे मस्तान मियाँ

ज़ोर–ज़बर से इश्क़ न होये राज न होये ज़ोर–ज़बर
लालकिला को आँख दिखाकर ख़ूब हँसे मस्तान मियाँ

फ़िक्र किसे जो राह दिखाये लोग भटकते रोज़ यहाँ
बारादरी में राह दिखाकर ख़ूब हँसे मस्तान मियाँ

नाम जपन पर ज़ोर नही पर नेक चलन पर ज़ोर दिया
रंग–महल में बांस बजाकर खूब हँसे मस्तान मियाँ

राजभवन की शान बढ़ी या शान घटी मा'लूम नहीं
राजभवन में रंक बिठाकर खूब हँसे मस्तान मियाँ

माहज़बी और चंद्रमुखी हैं क़ैद महल में कौन सुने
शीशमहल की काँच हटाकर खूब हँसे मस्तान मियाँ

गाँव से जब से शहर में आये रंग दिखायें रोज़ नया
चोर गली में शोर मचाकर ख़ूब हँसे मस्तान मियाँ

सृजन स्मरण

भवानी प्रसाद मिश्र

(जन्म : 29 मार्च, 1913; निधन : 20 फरवरी, 1985)

बुनी हुई रस्सी को घुमायें उल्टा
तो वह खुल जाती है
और अलग–अलग देखे जा सकते हैं
उसके सारे रेशे
मगर कविता को कोई
खोले ऐसा उल्टा
तो साफ नहीं होंगे हमारे अनुभव

श्रद्धांजलि

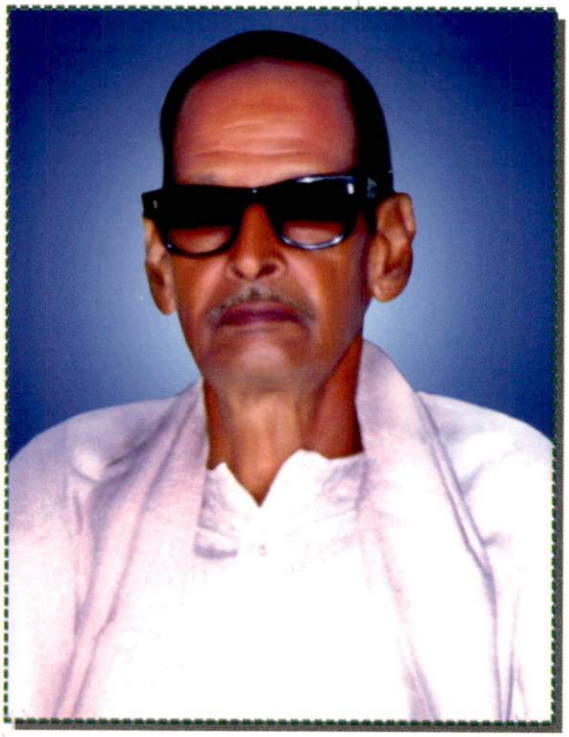

पं॰ पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

(जन्म : 17 जुलाई, 1932; निधन : 23 जनवरी, 2008)

हर पल, बीत गया जो कल,
आज तथा आगामी कल,
भूले नहीं कभी जब उनको,
तब कैसा ? यह 'याद करें'।
बाबू जी को 'याद करें'।
क्या भूल गये ? जो याद करें।

डॉ॰ अनिल कुमार पाठक